ज्ञाता, द्रष्टा, दृष्टि

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

ज्ञाता का अर्थ है जानने वाला। द्रष्टा का अर्थ है तटस्थ भाव से रहना। दृष्टि का अर्थ है समभाव से देखना। सम्यक् दर्शन चारित्राणि मोक्ष मार्गः अर्थात् सम्यक् दर्शन मोक्ष का मार्ग है। सम्यक् दृष्टि होने से मोक्ष प्राप्त हो सकता है। दर्शन के बाद ज्ञान होता है। ज्ञान निर्णय करता है। यदि चिन्तन ही गलत है तो दृष्टि भ्रम हो सकता है। जीवन में ज्ञाता द्रष्टा भाव होना चाहिए। सभी वस्तुओं में आत्मवत् दृष्टि होनी चाहिए। सभी जीवों को अपने समान मानना चाहिए। इससे सम्यक् दृष्टि होती है। ज्ञान का सार आचरण है। आचरण ही चारित्र कहलाता है। दृष्टि के बदलने से दशा बदल जाती है। आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। ज्ञाता द्रष्टा भाव में रहने से हम सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं।

मोह विभाव रूप है। राग, द्वेष मोहजनित होता है। सम्यक् और असम्यक् के बीच में भेद रेखा खींची जानी चाहिए। चेतन और जड़ का संयोग बंधन है। जब आत्मा शुद्धावस्था में रहती है तो वह अपने मूल स्वभाव में रहती है। जीवात्मा इन्द्रिय सुख का अनुभव करती है। यह जड़ भाव है। राग–द्वेष के समाप्त होने से संशय समाप्त हो जाता है।

यों तो इन त्रिगुणात्मक कर्मों की जड़ उखाड़ फेंकने के लिये अथवा बुद्धि वृत्तियों का प्रवाह बंद कर देने के लिये सहस्रों साधन हैं, परन्तु जिस उपाय से और जैसे सर्वशक्तिमान भगवान में स्वाभाविक निष्काम प्रेम हो जाय, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। यह बात स्वयं भगवान ने कही है। गुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, अपने को जो कुछ मिले वह सब प्रेम से भगवान को समर्पित कर देना, भगवत्प्रेमी महात्माओं का सत्संग, भगवान की आराधना, उनकी कथा–वार्ता में श्रद्धा, उनके गुण और लीलाओं का कीर्तन, उनके चरण कमलों का ध्यान और उनके मन्दिरमूर्ति आदि का दर्शन–पूजन आदि साधनों से भगवान में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। यही ज्ञाता द्रष्टा दृष्टि है।

सर्वशक्तिमान ईश्वर समस्त प्राणियों में विराजमान हैं– ऐसी भावना से यथाशक्ति सभी प्राणियों की इच्छा पूर्ण करें और हृदय से उनका सम्मान करें। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर– इन छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार भगवान की साधन–भक्ति का अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उस भक्ति के द्वारा ईश्वर के चरणों में अनन्य प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

जब भगवान के लीला शरीरों से किये हुए अद्‌भुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रों को श्रवण करके अत्यन्त आनन्द के उद्रेक से मनुष्य का रोम–रोम पुलकित और नाचने लगता है, जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागल की तरह कभी हंसता है, कभी करुण–क्रन्दन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवतभाव से लोगों की वन्दना करने लगता है। जब वह भगवान में ही तन्मय हो जाता है, बार–बार लंबी सांस खींचता है और संकोच छोड़कर जगत्पते नारायण कहकर पुकारने लगता है– तब भक्तियोग के महान प्रभाव से उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद् भाव की ही भावना करते–करते उसका हृदय भी तदाकार–भगवन्मय हो जाता है।

उस समय उसके जन्म–मृत्यु के बीजों का खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान को प्रात कर लेता है। इस अशुभ संसार के दलदल में फंसकर अशुभमय हो जाने वाले जीव के लिये भगवान की यह प्राप्ति संसार के चक्कर को मिटा देने वाली है। इसी वस्तु को कोई विद्वान ब्रह्म और कोई निर्वाण–सुख के रूप में पहचानते हैं। इसलिये सभी मानव अपने–अपने हृदय में हृदयेश्वर भगवान का भजन करें। अपने हृदय में ही आकाश के समान नित्य विराजमान भगवान का भजन करने में कौन सा विशेष परिश्रम है। वे समान रूप से समस्त प्राणियों के अत्यन्त प्रेमी मित्र हैं और तो क्या, अपने आत्मा ही हैं। उनको छोड़कर भोग सामग्री इकट्ठी करने के लिये भटकना कितनी मूर्खता है।

धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी, खजाना और भांति–भांति की विभूतियां और तो क्या, संसार का समस्त धन तथा भोग सामग्रियां इस क्षणभंगुर मनुष्य को क्या सुख दे सकती हैं। वे स्वयं ही क्षणभंगुर हैं। जैसे इस लोक की सम्पत्ति प्रत्यक्ष ही नाशवान है, वैसे ही यज्ञों

से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि लोक भी नाशवान और आपेक्षिक–एक दूसरे से छोटे–बड़े, नीचे–ऊँचे हैं। इसलिये वे भी निर्दोष नहीं है। निर्दोष हैं केवल परमात्मा। न किसी ने उनमें दोष देखा है और न सुना है, अतः परमात्मा की प्राप्ति के लिये अनन्य भक्ति से उन्हीं परमेश्वर का भजन करना चाहिये। इसके सिवा अपने को बड़ा विद्वान मानने वाला पुरुष इस लोक में जिस उद्देश्य से बार–बार बहुत से कर्म करता है, उस उद्देश्य की प्राप्ति तो दूर रही–उलटा उसे उसके विपरीत ही फल मिलता है और निस्सन्देह मिलता है। कर्म में प्रवृत्त होने के दो ही उद्देश्य होते हैं– सुख पाना और दुःख से छूटना। परन्तु जो पहले कामना न होने के कारण सुख में निमग्न रहता था, उसे ही अब कामना के कारण यहां सदा सर्वदा दुःख ही भोगना पड़ता है।